दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

सि.वि. (मु.) सं.96/2006

<u>निर्णय की तिथि : 10 सितंबर, 2009</u>

लक्ष्मी नारायण खेमा ....याचिकाकर्ता

द्वारा: श्री मनीष कबली के साथ श्री मंजीत पाठक, अधिवक्ता।

बनाम

तुलसियान धरमशाला ट्रस्ट खेतर ..... प्रत्यर्थी

द्वारा: नेमो।

कोरमः

माननीय श्री न्यायाधीश वीपिन सांघी

1. क्या स्थानीय समाचार पत्रों के संवाददाताओं को निर्णय देखने की अनुमति दी जा सकती है? नहीं
2. संवाददाता के पास प्रेषित किया जाना है या नहीं? हां
3. क्या निर्णय को डाइजेस्ट में प्रकाशित किया जानी चाहिए? हां

<u>निर्णय (मौखिक)</u>

<u>न्या. विपिन सांघी</u>

1. भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत इस याचिका को चुनौती देने के लिए श्री शिव नारायण ढींगरा, जिला न्यायाधीश, दिल्ली (जैसा कि वे उस समय थे) द्वारा पारित दिनाँक 14.09.2005 का आदेश है। जिसमे ट्रस्ट अधिनियम मामला सं 2/93 जिसका शीर्षक है *"श्री लक्ष्मी नारायण खेमा बनाम तुलसी धर्मशाला ट्रस्ट (खेत्री) और अन्य"* जिसके तहत याचिकाकर्ता द्वारा चैरिटेबल एंड रिलीजियस न्यास एक्ट, 1920 की धारा 3 के तहत दायर उपरोक्त याचिका को खारिज कर दिया गया है।

2. याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित मूल राहतों के लिए प्रार्थना करते हुए उपरोक्त याचिका दायर की थीः

1. विचाराधीन न्यास के प्रबंध न्यासियों की नियमित और आवधिक बैठक आयोजित करना;
2. न्यास के खाते का लेखापरीक्षा कराने के लिए क्योंकि उनका लेखापरीक्षा नहीं किया जाता है;
3. याचिकाकर्ता को विचाराधीन न्यास के न्यास विलेख की एक प्रति और न्यास की संपत्ति के किरायेदारों की सूची की एक प्रति भी प्रदान की जाए।

3. उक्त याचिका को इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि याचिका में मांगी गई राहत धर्मार्थ और धार्मिक न्यास अधिनियम 1920 की धारा 3 के दायरे में नहीं आती है, और याचिकाकर्ता ने सि.प्र.सं. की धारा 92 के तहत मुकदमा दायर करने के न्यायालय से अनुमति नहीं मांगी थी।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चूंकि न्यास अधिनियम के मामले को उपरोक्त अधिनियम की धारा 3 को लागू करके प्राथमिकता दी गई थी, न कि सि.प्र.सं. की धारा 92 के तहत। याचिकाकर्ता के लिए सि.प्र.सं. की धारा 92 के तहत निचली अदालत की अनुमति लेना अनिवार्य नहीं था। धर्मार्थ और धार्मिक न्यास अधिनियम 1920 एक विशेष अधिनियम है जो उक्त अधिनियम के तहत याचिका दायर करने वालों द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया को प्रदान करता है। उक्त अधिनियम में सि.प्र.सं. की धारा 92 के विपरीत, उक्त अधिनियम के तहत याचिका दायर करने से पहले या साथ में न्यायालय की अनुमति प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। नतीजतन, वह प्रस्तुत करता है कि विचारणीय न्यायालय को सि.प्र.सं. की धारा 92 को लागू करने और उपरोक्त अधिनियम की धारा 3 के तहत याचिका को बनाए रखने में समर्थ होने के लिए विचारणीय न्यायालय की अनुमति प्राप्त करने के दायित्व के अस्तित्व को मानते हुए अपने दृष्टिकोण में गलत दिशा दी गई थी। उन्होंने आगे कहा कि याचिका में मांगी गई राहत भी न्यास अधिनियम की धारा 3 के दायरे में आती है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, विवादित आदेश और अभिलेख को पढ़ने के पश्चात, मेरा यह विचार है कि याचिकाकर्ता की प्रस्तुतियों में योग्यता है। धर्मार्थ और धार्मिक न्यास अधिनियम की धारा 3 किसी भी व्यक्ति को, जो धर्मार्थ या धार्मिक प्रकृति के सार्वजनिक उद्देश्य के

लिए बनाए गए या मौजूद किसी भी व्यक्त या रचनात्मक न्यास में रुचि रखता है, उस न्यायालय में याचिका द्वारा आवेदन करने का अधिकार देती है, जिसके अधिकार क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं के भीतर न्यास का कोई भी महत्वपूर्ण हिस्सा स्थित है, सभी या निम्नलिखित में से किसी भी निर्देश को मूर्त रूप देने वाला आदेश प्राप्त करने के लिए, अर्थात्ः

> "1. न्यासी को न्यायालय द्वारा स याचिकाकर्ता को न्यास की प्रकृति और उद्देश्यों के बारे में, और न्यास के विषय-वस्तु के मूल्य, शर्त, प्रबंधन और अनुप्रयोग के बारे में, और उससे संबंधित आय के बारे में, या इनमें से किसी भी मामले के बारे में विवरण प्रस्तुत करने का निर्देश देना, और
>
> 2. यह निर्देश देते हुए कि न्यास के खातों की जांच और लेखा परीक्षा की जाएगी।"

6. अधिनियम की धारा 7 धार्मिक प्रकृति के धर्मार्थ के लिए एक सार्वजनिक न्यास के न्यासी को न्यास की संपत्ति के प्रबंधन और प्रशासन को प्रभावित करने वाले किसी भी प्रश्न पर अपनी राय, सलाह या निर्देश प्राप्त करने के लिए अदालत में याचिका दायर करने का अधिकार देती है।

7. धारा 2 "न्यायालय" पद को परिभाषित करती है जिसका अर्थ जिला न्यायाधीश का न्यायालय या राज्य सरकार द्वारा उस ओर से सशक्त कोई अन्य न्यायालय है और इसमें उच्च न्यायालय अपनी सामान्य मूल नागरिक अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करता है। धारा 5 उक्त अधिनियम के तहत याचिका

दायर करने और उसके निपटारे के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया निर्धारित करती है। उक्त प्रावधान इस प्रकार हैः

> "(1) यदि न्यायालय धारा 3 के अधीन याचिका की प्राप्ति पर, ऐसा साक्ष्य लेने और ऐसी जांच करने के बाद, यदि कोई हो, जो वह आवश्यक समझे, यह राय रखता है कि जिस न्यास से याचिका संबंधित है, वह एक ऐसा न्यास है जिससे यह अधिनियम लागू होता है, और याचिकाकर्ता का उसमें हित है, तो वह याचिका की सुनवाई के लिए एक तिथि निर्धारित करेगा, और इसकी एक प्रति, इस प्रकार निर्धारित तिथि की सूचना के साथ, न्यासी और किसी अन्य व्यक्ति को दी जाएगी, जिसे उसकी राय में याचिका की सूचना दी जानी चाहिए।
>
> (2) याचिका की सुनवाई के लिए निर्धारित तिथि पर, या किसी भी बाद की तारीख पर जिस पर सुनवाई स्थगित की जा सकती है, न्यायालय याचिकाकर्ता और न्यासी को सुनने के लिए आगे बढ़ेगी, यदि वह उपस्थित होता है, और कोई अन्य व्यक्ति जो नोटिस के परिणामस्वरूप उपस्थित हुआ है, या जिसे वह समझता है सुनना चाहिए, और ऐसी आगे की पूछताछ, यदि कोई हो, जो वह उचित समझे। न्यासी, यदि न्यायालय द्वारा ऐसा आवश्यक हो, तो पहली सुनवाई के समय या ऐसे समय के भीतर, जिसे न्यायालय अनुमति दे, अपने मामले का लिखित बयान प्रस्तुत कर सकता है। यदि वह एक लिखित बयान प्रस्तुत करता है, तो बयान पर हस्ताक्षर और सत्यापन के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) द्वारा निर्धारित तरीके से हस्ताक्षर और सत्यापन किया जाएगा।
>
> (3) यदि कोई व्यक्ति याचिका की सुनवाई में उपस्थित होता है और या तो न्यास के अस्तित्व से इनकार करता है या इस बात से इनकार करता है कि यह एक ऐसा न्यास है जिस पर यह

अधिनियम लागू होता है, और तीन माह के भीतर उस दायर आशय की घोषणा के वाद और किसी अन्य उचित राहत के वाद एक वाद दायर करने का वचन देता है, तो न्यायालय कार्यवाही पर रोक लगाने का आदेश देगा और यदि ऐसा वाद इस तरह स्थापित किया जाता है, तो रोक तब तक जारी रहेगी जब तक कि वाद का अंतिम निर्णय नहीं हो जाता।

(4) यदि ऐसा कोई वचन नहीं दिया जाता है, या यदि तीन महीने की समाप्ति के बाद ऐसा कोई वाद दायर नहीं किया गया है, तो न्यायालय स्वयं इस प्रश्न का निर्णय करेगा।

(5) उप-धारा (2) में उपबंधित जांच के पूरा होने पर, न्यायालय या तो याचिका को खारिज कर देगा या उस पर ऐसा अन्य आदेश पारित करेगा जो वह उचित समझे;

बशर्ते कि, जहां उप-धारा (3) के प्रावधानों के अनुसार कोई वाद दायर किया गया है, वहाँ न्यायालय द्वारा कोई आदेश पारित नहीं किया जाएगा जो उसमें अंतिम विनिश्च्यो के साथ विरोध उत्पन्न करता हो।

(6) इस धारा में दिए गए प्रावधान को छोड़कर, न्यायालय याचिकाकर्ता और न्यास के प्रतिकूल स्वामित्व का दावा करने वाले किसी भी व्यक्ति के बीच स्वामित्व के किसी भी प्रकार के प्रश्न का प्रयास या निर्धारण नहीं करेगा।"

8. उपरोक्त अधिनियम के प्रावधानों, विशेष रूप से धारा 3, 7 और 5 के अवलोकन पर, यह देखा गया है कि याचिकाकर्ता (जो अन्यथा उक्त अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने का हकदार हो सकता है) के लिए अधिनियम के तहत याचिका दायर करने के लिए न्यायायलय की अनुमति प्राप्त करने की कोई आवश्यकता निर्धारित नहीं है। धर्मार्थ और धार्मिक न्यास अधिनियम,

1920 एक विशेष अधिनियम है और उक्त अधिनियम के तहत अदालत द्वारा प्रदान की जा सकने वाली राहतों का दायरा बहुत सीमित है। धारा 3 के खण्ड (1) के तहत जो निर्देश जारी किए जा सकते हैं, वे वास्तव में याचिकाकर्ता को न्यास की प्रकृति और उद्देश्यों, और न्यास के विषय-वस्तु के मूल्य, स्थिति, प्रबंधन और अनुप्रयोग और उससे संबंधित आय के बारे में जानकारी प्राप्त करने में सक्षम बनाते हैं। दूसरी ओर, धारा 3 का खण्ड (2) न्यायालय द्वारा निर्देश जारी करने की अनुमति देता है कि न्यास के खातों की जांच और लेखा परीक्षा की जानी चाहिए। इस तरह का निर्देश याचिका की तारीख से तीन साल पूर्व की अवधि से संबंधित खातों के संबंध में जारी किया जा सकता है। धारा 7 द्वारा प्रदत्त शक्ति इस सीमा से परिगत है कि इस प्रावधान के तहत याचिका न्यास की संपत्ति के संबंध में न्यायालय से राय, सलाह या निर्देश लेने के लिए दायर की जा सकती है, जो न्यास के प्रबंधन से अलग है।

9. दूसरी ओर सि.प्र.सं. की धारा 92 एक साधारण प्रावधान है जो न्यायालय को सार्वजनिक दान से निपटने के लिए अधिक व्यापक शक्तियाँ देता है। सि.प्र.सं. की धारा 92(1) के धारा (क) से (छ) में गिने गए विशिष्ट राहतों के अलावा, न्यायालय के पास *मामले की प्रकृति के अनुसार "इस तरह की राहत या अन्य राहत देने की शक्ति की आवश्यकता हो सकती है।"* सि.प्र.सं. की धारा 92(3) के द्वारा न्यायालय को भी अधिक व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं।

10. सामान्य कानून में विहित प्रक्रिया, जो न्यायालय को अधिकार क्षेत्र का बहुत व्यापक दायरा प्रदान करती है, को विशेष कानून के तहत उपचार का लाभ उठाने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है, जिसे केवल एक सीमित उपचार देने के लिए बनाया गया है, विशेष रूप से जब विशेष कानून उपचार का लाभ उठाने के लिए अपनी प्रक्रिया निर्धारित करता है।

11. धारा 3 या उक्त अधिनियम की धारा 7 के तहत मांगी गई राहत के लिए, याचिकाकर्ता, मेरी राय में, अदालत की अनुमति प्राप्त करने के लिए बाध्य नहीं है जैसा कि सि.प्र.सं. की धारा 92 के तहत प्रदान किया गया है।

12. अब मामले के दूसरे पहलू पर आते हुए, मैंने पाया कि विचारण न्यायालय का यह निष्कर्ष सही नहीं था कि याचिका में मांगी गई कोई भी राहत धर्मार्थ और धार्मिक न्यास अधिनियम 1920 की धारा 3 के व्यप्ति और परिधि में नहीं आती है। याचिकाकर्ता ने याचिका में जिन राहतों के लिए अनुरोध किया है, मैं पहले ही उन्हें यहाँ से निकाल चुका हूँ। मांगी गई पहली राहत यह थी कि प्रत्यर्थीगण को न्यास की नियमित और आवधिक बैठक आयोजित करने का निर्देश दिया जाए। यह निर्देश न तो उक्त अधिनियम की धारा 3(1) और न ही 3(2) और न ही धारा 7 से संबंधित है। इसलिए, याचिकाकर्ता द्वारा धर्मार्थ और धार्मिक न्यास अधिनियम के प्रावधानों को लागू करके उक्त राहत के लिए अनुरोध नहीं किया जा सकता था। हालाँकि, याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई दूसरी और तीसरी राहत स्पष्ट रूप से उक्त

अधिनियम की धारा 3 के दायरे में आती है। याचिकाकर्ता द्वारा दूसरी राहत के लिए अनुरोध किया गया है कि वह एक निर्देश की मांग करे कि प्रत्यर्थीगण उत्तरदाताओं को खातों का लेखा-परीक्षण करवाना चाहिए क्योंकि उनका कथित रूप से लेखा-परीक्षण नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता ने विचाराधीन न्यासियों के न्यास विलेख की आपूर्ति और न्यास की संपत्ति के किरायेदारों की सूची की एक प्रति भी मांगी।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विचारण न्यायालय ने यह दर्ज करने में गलत किया कि प्रत्यर्थीगण द्वारा तुलनपत्र और अंकेक्षित लेखा खाते दायर किए गए थे। वे प्रस्तुत करते हैं कि विचारण न्यायालय के पास यह निष्कर्ष निकालने के लिए रिकॉर्ड में कुछ भी नहीं रखा गया था कि लेखा परीक्षकों ने समय-समय पर अपनी रिपोर्ट दी है और न्यासियों की बैठकें हो रही हैं। वह प्रस्तुत करता है कि न्यास की संपत्तियों और किरायेदारों की सूची भी दाखिल नहीं की गई है। वह विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनाँक 12.04.05 के आदेश का उल्लेख करता है जिसमें यह दर्ज किया गया था कि प्रत्यर्थीगण ने एक बार भी अंकेक्षित लेखा दाखिल नहीं किए थे, न ही किरायेदारों की सूची दायर की थी। वास्तव में, उन्हें अगली तारीख से पहले के निर्देशों का पालन करने का निर्देश दिया गया था। वह प्रस्तुत करता है कि इसके बाद मामले को दिनाँक 14.09.2005 पर निपटा दिया गया था

और इस तारीख तक भी प्रत्यर्थीगण द्वारा उक्त जानकारी प्रदान नहीं की गई थी।

14. प्रत्यर्थीगण ने उपरोक्त स्थिति का उल्लंघन करते हुए अपना जवाब दाखिल किया है। हालाँकि, इस स्थिति की पुष्टि करने के लिए कोई दस्तावेज अभिलेख पर दायर नहीं किया गया है कि अंकेक्षित लेखा या किरायेदारों की सूची दायर की गई है। इसके अलावा, जब मामले की सुनवाई हुई है तो कोई भी प्रत्यर्थी की ओर से पेश नहीं हुआ है। नतीजतन, मैंने विवादित आदेश को अभिखंडित कर दिया क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि यह गलत आधार पर स्थापित किया गया था कि याचिकाकर्ता सि.प्र.सं. की धारा 92 के तहत न्यायालय से राहत प्राप्त करने के लिए बाध्य था और गलत आधार पर कि याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई कोई भी राहत उक्त अधिनियम की धारा 3 के दायरे में नहीं आती थी। याचिकाकर्ता द्वारा दायर याचिका को याचिका में अनुरोध की गई दूसरी और तीसरी राहत के संबंध में बहाल किया जाता है। मामले को विचारण न्यायालय के समक्ष दिनाँक 25.09.2009 पर सूचीबद्ध होने दें। चूँकि प्रत्यर्थीगण इस विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हुए हैं, इसलिए आगे बढ़ने से पहले प्रत्यर्थीगण को विचारण न्यायालय द्वारा नोटिस दिया जाएगा।

न्या. विपिन सांघी

सितंबर, 10, 2009
डीपी/वीएन

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा/ समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*